5वीं और 8वीं कक्षाओं में अनुत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों को अब रोका जा सकेगा।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2010 के बाद स्कूली व्यवस्था में कोई आमूल–चूल बदलाव नहीं हो पाया है।

डा. हरिवंश चतुर्वेदी,
निदेशक, बिमटेक

लोकसभा द्वारा शिक्षा का अधिकार (द्वितीय संशोधन) विधेयक, 2017 को पारित किये जाने के बाद अब राज्य सरकारों को पुनः यह अधिकार मिल गया है कि 5वीं और 8वीं कक्षाओं में अनुतीर्ण होने वाले विद्यार्थियों को रोका जा सकेगा। शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2010 का यह मुख्य प्रावधान था कि 8वीं कक्षा तक बच्चों को फेल नहीं किया जायेगा।

मानव संसाधन मंत्री प्रकाश जावडेकर का कथन था कि 8वीं कक्षा तक बच्चों का फेल न करने की नीति से स्कूली शिक्षा व्यवस्था चरमरा रही थी और अनेक राज्य सरकारों ने इस नीति को वापस लेने की मांग की थी। केन्द्र सरकार का यह मानना है कि इस संशोधन के बाद प्रारंभिक शिक्षा व्यवस्था में फिर से जवाबदेही पैदा की जा सकेगी।

5वीं और 8वीं कक्षाओं में फेल होने वाले बच्चों को अगली कक्षा में जाने से रोका जाना हमारी स्कूली शिक्षा की एक बड़ी दुविधा का प्रतीक है। 1 अप्रैल, 2010 से लागू किये गये शिक्षा का अधिकार अधिनियम की यह एक प्रमुख मौलिक सोच थी कि यदि हम देश के हर बच्चे को 6 से 14 वर्ष की आयु में प्रारंभिक शिक्षा पाने का अधिकार देते हैं तो उन्हें खराब रिजल्ट के लिये फेल न करके निरंतर मूल्यांकन के जरिये लगातार सुधारने की कोशिश करनी चाहिये। भारत के संविधान में दिये गये निर्देशक सिद्धान्तों में यह जिम्मेदारी केन्द्र सरकार व राज्य सरकारो को दी गई थी कि वे 14 वर्ष तक के सभी बच्यों को प्रारंभिक शिक्षा देना सुनिश्चित करें। 2010 में लागू किये गये शिक्षा का अधिकार अधिनियम के पीछे यही भावना रही कि बच्चों को फेल करने की बजाये स्कूली शिक्षा व्यवस्था को जवाबदेह बनाया जाये।

नया कानूल बनने के दो वर्षों बाद ही बच्चों को 8वीं कक्षा तक फेल न करने की नीति का विरोध होना शुरू हो गया था। 2012 में यूपीए–2 के कार्यकाल में हुई सेंट्रल एडवाइजरी बोर्ड फॉर एजुकेशन (सीएबीई) की बैठक में राज्य सरकारों के प्रतिनिधियों ने फेल न करने की नीति का जम कर विरोध किया था। उनका कहना थ कि 9वीं और 10वीं कक्षाओं के परीक्षाफलों में होने वाली गिरावट का कारण 8वीं तक फेल न करने की नीति है जो स्कूली शिक्षा के लिये अभिशाप बन गई है।

सीएबीई की उपरोक्त बैठक में हरियाणा की तत्कालीन शिक्षा मंत्री गीता भुक्कल की अध्यक्षता में एक उपसमिति का गठन किया गया जो कि राज्य सरकारों की इस मांग पर विचार करे कि 8वीं तक फेल होने वाले बच्चों को रोका जाये या नहीं। गीता भुक्कल समिति ने 2014

में पेश की गई अपनी रिपोर्ट में यह सिफारिश की थी कि बच्चों को 8वीं तक फेल न करने की नीति को क्रमिक रूप में वापस लिया जाये। समिति का कहना था कि बच्चों को फेल न करने की नीति ने पढ़ाई के लिये बच्चों और उनके शिक्षकों की अभिप्रेरणा को खत्म कर दिया है और अब वे मेहनत करने से बच रहे हैं। गीता भुक्कल समिति ने यह माना कि एक आदर्श वातावरण में ही यह नीति सफल हो सकती थी। मई, 2014 में एनडीए की सरकार बनने पर उक्त रिपोर्ट को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया था।

मानव संसाधन मंत्रालय ने गीता भुक्कल समिति की रिपोर्ट को लागू करने से पहले फिर एक बार 2015 में राज्य सरकारों से पूछा कि क्या वे फेल न करने की नीति के पक्ष में है या विपक्ष में। जिन 22 राज्यों ने इस सवाल पर अपनी राय मानव संसाधन मंत्रालय को भेजी थी, उनमें से 18 राज्य इसे वापस लेने के पक्ष में थे और सिर्फ 4 राज्य – महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और कर्नाटक की सरकारें फेल न करने की नीति को जारी रखने का समर्थन कर रहीं थीं। राजस्थान और दिल्ली सरकार ने भी यही रूख अख्तियार किया था।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2010 के लागू होने के पांच वर्षों बाद 2015 में जब 9वीं और 10वीं कक्षा के नतीजों की समीक्षा की गई तो यह पाया गया कि इन कक्षाओं में फेल होने वाले बच्चों की तादाद पहले से ज्यादा हो गई। इस के कारणों की जांच–पड़ताल में यह मालुम हुआ कि 2010 के बाद बच्चों में परीक्षा में फेल होने का डर खत्म हो गया। शिक्षकों में भी बच्चों के प्रति जिम्मेदारी की भावना खत्म हो गई। बच्चे नियमित रूप से स्कूल नहीं जाते थे। चूंकि वे हर साल बिना मेहनत के अगली कक्षा में पहुँच जाते थे, तो उनके मां–बाप यह समझते रहे कि उनका बच्चा पढ़ रहा होगा। उन्हें झटका तब लगता था जब वह 9वीं कक्षा में फेल हो जाता था।

आजादी के बाद शिक्षा नीति दो बार 1968 और 1986/1992 में घोषित की गई थी। स्कूली शिक्षा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कानून 2009 में संसद द्वारा पारित किया गया, जिसे शिख का अधिकर अधिनियम के नाम से जाना जाता है। इस कानून के तहत केंद्र और राज्य सरकारों को यह वैधानिक जिम्मेदारी दी गई कि 6 से 14 वर्ष की आयु के हर बच्चे को प्रारंभिक शिक्षा औपचारिक रूप से किसी ऐसे स्कूल में दी जाए, जहां सभी न्यूनतम मानक पूरे होते हों। इसी कानून के तहत हर निजी स्कूल में 25 प्रतिशत सीटें आर्थिक रूप से विपन्न वर्ग के बच्चों के लिए आरक्षित की गई हैं। हालांकि ज्यादातर प्राइवेट स्कूलों में इसका पालन ठीक तरह से नहीं किया गया।

भारत की स्कूली शिक्षा में शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2010 को एक ऐतिहासिक कानून के रूप में देखा गया क्योंकि पहली बार 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों को 8वीं कक्षा तक प्रारंभिक शिक्षा पाने का अधिकार दिया गया और सरकार को इसके लिये जवाबदेह बनाया गया। 5वीं और 8वीं कक्षा तक बच्चों को फेल न करने की नीति इसका नीतिगत फैसला था। किन्तु इस ने वंचितों के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा के बेहतर अवसर मिलने की बजाय उन्हें इसे के प्रति लापरवाह क्यों बना दिया? वास्तव में 8वीं कक्षा तक बच्चों को फेल न

करने का प्रावधान एक प्रगतिशील विचार या कल्पना थी जो कि यह मानती थी कि ''कोई भी बच्चा कभी फेल नहीं होता, बल्कि स्कूली व्यवस्था उस को सुशिक्षित करने में नाकामयाब होती है।''

स्कूली शिक्षा में बड़े सुधार सिर्फ प्रगतिशील विचारों और उनकी कल्पना करने मात्र से नहीं होते। क्या आज यह सवाल नहीं पूछा जाना चाहिये कि 2010 में कानून बनाने के बाद स्कूली व्यवस्था में आमूल–चूल बदलाव के लिये केन्द्र और राज्य सरकारों ने क्या किया? बजटरी व्यवस्था, पाठ्यक्रम, पढ़ाने के तौर–तरीकों, शिक्षकों एवं बुनियादी सुविधाओं के समुचित प्रबंधन के लिये क्या हम कुछ कर पाये?

नई शिक्षा नीति के लिये मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा गठित डा. कस्तूरी रंगन कमेटी की रिपोर्ट जुलाई, 2018 में प्रस्तुत की जानी थी किन्तु उसे अभी फिलहाल टाल दिया गया हैं। लेकिन नई शिक्षा नीति बनाने के लिये अक्टूबर, 2015 में तत्कालीन मानव संसाधन मंत्री स्मृति ईरानी द्वारा गठित टीएसआर सुब्रहमण्यम कमेटी ने 8वीं कक्षा तक बच्चों को फेल न करने के प्रावधान पर पूरे देश के शिक्षाविदों से बातचीत की और अपनी राय दी। इस कमेटी ने अप्रैल, 2016 में प्रस्तुत की गई रिपोर्ट में कहा कि बच्चों को प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर फेल न करने की नीति कक्षा 5 तक जारी रहनी चाहिये। कमेटी का कहना था कि 11 वर्ष तक आयु के बच्चों को फेल होने की यंत्रणा से मुक्त रखा जाये, किन्तु कक्षा 6 से ऊपर की कक्षाओं के बच्चों को यह सुविधा नहीं मिलनी चाहिये।

संख्या के आधार पर देखा जाये, तो दुनिया में भारत की स्कूली शिक्षा–व्यवस्था चीन के बाद दुनिया में दूसरे स्थान पर होगी। देश के 15 लाख स्कूलों में 26 करोड़ बच्चे पढ़ते हैं। इन 15 लाख स्कूलों में 11 लाख सरकारी स्कूल और 4 लाख प्राइवेट स्कूल हैं। प्राइमरी स्कूलों में पढ़ाने वाले अध्यापकों की संख्या 85 लाख है, जिनमें से 47 लाख अध्यापक सरकारी स्कूलों में कार्यरत हैं।

इस बात पर बहस होनी चाहिये कि भारतीय संविधान में 6–14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा देने की गारंटी को भारतीय राज्य अभी तक क्यों पूरा नहीं कर पाया है? आजादी के 70 वर्ष बाद भी 6–14 वर्ष की आयु के 3 करोड़ बच्चे प्रारंभिक शिक्षा से वंचित हैं। लाखों सरकारी और प्राईवेट स्कूलों में आज भी बुनियादी सुविधाएँ जैसे भवन, फर्नीचर, शिक्षक, शौचालय, किताबें आदि उपलब्ध नहीं हैं। क्या प्रस्तावित नई शिक्षा नीति में इसके लिये समुचित वित्तीय संसाधनों की व्यवस्था की जायेगी? क्या स्कूली शिक्षकों की भर्ती, शिक्षा और प्रशिक्षण के बारे में कोई मौलिक विचार दिया जायेगा?